कवच-कलश

महेश प्रसाद पाठक

Copyright © 2019, Mahesh Prasad Pathak
All rights reserved.

No part of this publication may be reproduced or transmitted in any form or by any means, electronic or mechanical, including photocopy, recording or any information storage and retrieval system now known or to be invented, without permission in writing from the publisher, except by a reviewer who wishes to quote brief passages in connection with a review written for inclusion in a magazine, newspaper or broadcast.

Published in India by Prowess Publishing,
YRK Towers, Thadikara Swamy Koil St, Alandur,
Chennai, Tamil Nadu 600016

ISBN: 978-93-89097-57-3

Library of Congress Cataloging in Publication

विषय सूची

पृष्ठ संख्या

प्राक्कथन ix

समर्पण xiii

पूर्वार्द्ध

अन्तर्भावों का जागरण 3

श्रद्धा और विश्वास. 7

साधना से मुक्ति 12

प्रयोजन के लिए विशेष आयोजन 15

मानसिक भावनाओं को पढ़ें 18

साधना से सफलता 22

सिद्धियों पर अभिमान न करें ! 28

साधकों के लिए महत्वपूर्ण बातें. 31

मन्त्र-जप में संदेह न करें ! 34

साधना और आहार 38

गुरुस्वरुप एवं दीक्षा. 43

कामनाओं के अनुसार देवोपासना 50

पूजनोपरान्त क्षमा प्रार्थना.....57

कवच.....59

विनियोग-ऋषि, देवता, छन्द आदि 62

उत्तरार्द्ध

संसार मोहन श्रीगणपति कवचम्.....69

जगद्विलक्षण सूर्य कवचम् 72

ब्रह्माण्ड पावन श्रीकृष्ण कवचम् 75

त्रैलोक्यविजय श्रीकृष्ण कवचम्.....78

योगनिद्रयोपदिष्टं श्रीकृष्ण कवचम्.....82

व्याधिहर वैष्णव कवचम् 85

नारायण कवचम् 89

नृसिंह कवचम् 94

संसार पावन शिव कवचम्.....96

ब्रह्माण्डविजय शिव कवचम्.....99

विश्वजय सरस्वती कवचम् 102

श्रीजगन्मङ्गल-राधा कवचम्.....106

ब्रह्माण्ड-मोहन प्रकृति-कवचम् 110

सर्वैश्वर्यप्रद लक्ष्मी कवचम्.....112
सर्वैश्वर्यप्रद महालक्ष्मी कवचम्.....114
ब्रह्माण्डविजय दुर्गा कवचम्.....117
गायत्री कवचम्.....120
काली कवचम्.....124
तारा कवचम्.....127
षोड़शी (त्रिपुरसुंदरी) कवचम्.....132
भुवनेश्वरी कवचम्.....134
भैरवी कवचम्.....137
छिन्नमस्ता कवचम्.....140
धूमावती कवचम्.....143
बगलामुखी कवचम्.....145
मातङ्गी कवचम्.....148
हनुमत्कवचम्.....150
अन्त में.....153
पुस्तक सन्दर्भ.....155

प्राक्कथन

'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति ॥' (ऋग्वेद०—१/१४६/४६) । हमारी संस्कृति का आधार ही सदाचार है । सभी धर्मशास्त्रों में सदाचार को श्रेष्ठ माना गया है । आचार से ही पुण्योदय होता है । इस पुण्य के स्वामी भगवान् अच्युत हैं । हमारी संस्कृति में ईश्वरवाद का स्थान प्रमुख माना जाता है । ईश्वर को प्रायः सभी धर्मावलम्बी मानते हैं । सभी धर्मों में ईश्वर के अलग-अलग नाम भी हैं । इस प्रकार परमात्मा के अनेक नाम हैं और प्रत्येक नाम में अपार शक्ति है । इस कलियुग में नाम-जप का प्रभाव अत्यन्त कल्याणकारी है । श्रुति कहती है कि अखिल ब्रह्माण्ड में जो कुछ भी जड़-चेतन आदि है, उनसभी में ईश्वर व्याप्त हैं, फिर भी हम ईश्वर को खोजते फिरते हैं । रामचरितमानस में कहा है—"जो माया, ईश्वर एवं अपने स्वरुप को नहीं जानता, वह जीव है एवं जो कर्मानुसार बंधन तथा मोक्ष देने वाला, सबों से परे, माया के प्रेरक और कल्याणमय है, वही ईश्वर है ।" प्रत्येक मनुष्य की प्रकृति, बुद्धि, आहार, व्यवहार अलग-अलग हुआ करती है, उसी से प्रेरित होकर मनुष्य पाप-पुण्यरूपी आचरण कर दुःख एवं सुख का भागी बनता है । इन्हीं दुःख-सुख के सागर में पड़े रहना ये अपना विधि-विधान मान लेते हैं । क्या इससे छुटकारा पाया जा सकता है ? इसका उपाय है—अपने मन को शांत रखना, अहंभाव को त्यागना एवं भगवान् की शरणागति होना । इस उपाय से सभी कष्टों से छुटकारा पाया जा सकता है ।

भगवान् के कोई भी नाम अगर श्रद्धापूर्वक लिए जाय तो मनुष्य भवसागर से पार हो सकता है । नाम-जप से हमारे शरीर के महत्वपूर्ण चक्रों में स्पंदन होने लगता है, हम स्वयं की सत्ता से दूर होते चले जाते हैं, एकाग्रता बढ़ने लगती है और परमसत्ता से एकरसता का अनुभव होने

लगता है। नाम-जप का प्रभाव मात्र हमारे मानसिक स्तर पर ही नहीं अपितु स्वास्थ्य पर भी पड़ता है। उदाहरण के रूप में साधकों को देखें, उनके शरीर में अजीब की चुस्ती-स्फूर्ति बनी रहती है। किसी साधक ने इसे इस प्रकार व्यक्त किया है—'जप से ध्यानस्थ हों तथा ध्यान से जप का अभ्यास करें। इस प्रकार जप और योग के सम्पादन से परमात्मा का प्रकाश दिखाई देने लगता है'।

मन्त्र-जप साधारणतः लोग पढ़कर करने लग जाते हैं। नाम-जप का प्रभाव सदैव हितकारी ही होता है। लेकिन मन की चंचलता के कारण हमारा चित्त एकाग्र नहीं हो पाता, परिणामतः प्रभाव नहीं दिख पाने के कारण साधक अपना धैर्य खो बैठते हैं। मन की तल्लीनता एवं एकाग्रता द्वारा ही किसी लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है। आध्यात्मिक मार्ग में किसी विशिष्ट उद्देश्य की पूर्ति हेतु अथवा किसी मन्त्र-विशेष की प्राप्ति के लिए सद्गुरु की सहायता लेनी चाहिये। सद्गुरु ही सच्चे मार्गदर्शक हैं। इनपर श्रद्धा और विश्वास रखना चाहिये, क्योंकि ये नरदेहधारी नारायण ही होते हैं, ये ही हमारे उद्धारकर्ता हैं।

प्रस्तुत पुस्तक के 'उत्तरार्द्ध' में चुने हुए कवच पाठ दिए गए हैं जो पुराणोक्त एवं तंत्रग्रन्थ से उद्धरित हैं। ये दिव्य कवच परमकल्याणकारी हैं। कहा गया है—**'नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः'**। 'बलहीन व्यक्ति को आत्मज्ञान की प्राप्ति नहीं होती'। अतः हमें उन दैवीय शक्ति-स्रोतों का पता लगाना होगा, जिसे अर्जित कर हम अपने मानव-तन को समाजसेवा, परोपकार, आत्मतत्व की खोज तथा परमात्मविचार में लगायें। "पटल देवता का शरीर है, पद्धति मस्तक है, कवच नेत्र हैं, सहस्रनाम मुख हैं तथा स्तोत्र जिह्वा हैं"—इन्हें ही पंचांग कहा गया है। परमसत्ता द्वारा प्रदत्त कवचरूपी शक्तिपुंजों के माध्यम से स्वयं को सुरक्षित रखा जा सकता है। अपने इष्टदेव के सिद्धकवच को गुरु से लेकर धारण करें, तभी यह फलवती होती है। कवच धारण कर साधक को विनय-भाव में रहना चाहिये। स्मरण रहे, अपनी सिद्धियों पर अहंकार कदापि न करें। ये सिद्धियाँ इष्टदेव ने आपके पास धरोहर के रूप में रखने को दी हैं। अतः उन्माद, अहंकार, अमानवीय ढंग से इसका गलत प्रयोग

न करें, अन्यथा जिनके स्वामित्व में यह सिद्धि है, वे अपने पास आपसे वापस भी ले सकते हैं और आप हाथ मलते रह जायेंगे। तनिक इसपर विचार करें कि कितनी मेहनत से आपने इन सिद्धियों को अर्जितकर धारण किया था परन्तु प्रमादवश आपने यह अमूल्य निधि खो दी। सिद्धि के धारकों में क्षमा, दया, सत्य, सहिष्णुता, सदाचार, समभाव, धैर्य आदि जैसे गुण रहने चाहिये, क्योंकि ये सद्गुण ही इनकी अभिवृद्धि करने वाले तत्त्व हैं।

किसी कार्य को करने के लिए सर्वप्रथम उस कार्य की रुपरेखा तैयार करनी होती है, अतः पुस्तक के 'पूर्वार्द्ध' में साधकों को मानसिक रूप से तैयार किये जाने वाले आवश्यक आधार की चर्चा की गयी है, इससे साधकों को एक नई उर्जा मिलेगी, आत्मविश्वास बढ़ेगा, ऐसा मेरा विश्वास है।

किसी कार्य की सराहना उसके गुणों के आधार पर ही होती है। इस पुस्तक के माध्यम से साधकों के लिए एक सन्देश है कि साधक अपनी साधना में उत्तरोत्तर वृद्धि कर अपने लक्ष्य तक कैसे पहुँचें ? आध्यात्मिक दृष्टिकोण से साधक का लक्ष्य सांसारिक भोग-विलास प्राप्त करना नहीं, अपितु आत्मज्ञान और परमात्मतत्व का ज्ञान ही लक्ष्य माना जाना चाहिये। मैं स्वयं को अल्पमति समझते हुए इस विषय पर लेखन जैसा दुष्कर कार्य करने का संकल्प शायद हरिप्रेरणा के कारण ही ले सका हूँ। पुस्तक में कोई त्रुटियाँ अगर रह गई हों, कोई मन्त्र न्यून अथवा अधिक हों, तो इसे मेरी अज्ञानता समझें एवं विद्वान साधकगण इसे संशोधित कर लेंगे। हमारा यह प्रयास होगा कि आगामी संस्करण अशुद्धि रहित हो।

साधकगण इस पुस्तक से यत्किञ्चित भी लाभान्वित हो सकें, तो मैं अपना प्रयत्न सार्थक समझूंगा।

दिनांक: 07 मई 2019 (अक्षय तृतीया) **महेश प्र. पाठक**
स्थान: गिरिडीह (झा.)

समर्पण

सर्वप्रथम सभी गुरुजनों एवं मातृ-पितृ के चरणकमलों का ध्यान करते हुए, जिनकी सूक्ष्मप्रेरणा ने हमें इस कार्य को करने के लिए उत्साहित किया, उन्हें नमस्कार करता हूँ।

****

जो वर, वरेण्य, वरद, वरदायकों के कारण एवं सम्पूर्ण प्राणियों की उत्पत्ति के कारण हैं, उन तेजस्वरुप परमात्मा को मैं नमस्कार करता हूँ।

****

जो मंगलकारी, मंगल के योग्य, मंगलरूप, मंगलदायक एवं समस्त मंगलों के आधार हैं, उन मंगलमय मारुतिनन्दन को मैं नमस्कार करता हूँ।

अन्तर्भावों का जागरण

साधक की साधना उसके एकाग्रचित्तता में निहित अंतर्भावों द्वारा व्यक्त होती है। इन भावों में जितनी गहनता आयेगी, साधना उतनी ही दृढ़ होगी। यह ठीक उसी प्रकार से व्यक्त की जा सकती है, जैसे कम भार वाली वस्तु जल के उपर तैरने लगती है और भारी वस्तुऐं तलहटी में बैठ जाती है। योगदर्शन के समाधिपाद का दूसरा सूत्र है— **योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः** ॥ अर्थात् 'चित्त वृत्तियों को रोकना ही योग है'। चित्तवृत्तियों की चेष्टाओं को बहिर्मुखी बनाने से हम सांसारिक भौतिक विषयों की ओर आकृष्ट होने लगते हैं। अतः इन्हें रोककर अंतर्मुखी बनाना चाहिये। योगमार्ग मात्र स्वस्थ रहने का साधन ही नहीं, बल्कि अध्यात्मपरक भी है। योगमार्ग का अनुकरण करने वाला कभी भोगवादी बन ही नहीं सकता।

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः॥
(गीता, ६/२९)

अर्थात् योगयुक्त पुरुष सभी पदार्थों में आत्मा का निवास देखता है, इस तरह वह संसार को समभाव से देखने लगता है और वह समदर्शी बन जाता है'। हमें यह नहीं भूलना चाहिये, कि हमारा यह शरीर अद्‌भुत एवं विलक्षण प्रतिभा-संपन्न है, क्योंकि यह परमात्मा की दी हुई निधि है। इस अन्तर्निहित प्रतिभा को जानने की कोशिश करनी चाहिये, जो योगमार्ग से ही संभव है।

किसी कार्य को करने के पहले कुछ निर्धारित अनुशासन होते हैं, चाहे वह योगमार्ग हो अथवा तन्त्रमार्ग। महर्षि पतञ्जलि ने 'योगदर्शन' का आरम्भ ही **"अथ योगानुशासनम् ॥"** से किया है। क्योंकि यथार्थ योग अनुशासित होकर ही किया जाता है। उसी प्रकार महर्षि वेदव्यास ने 'ब्रह्मसूत्र' नामक ग्रन्थ के पहले पद में लिखा है—**"अथातो ब्रह्मजिज्ञासा ॥"** अर्थात् 'यहाँ से ब्रह्म विषयक विचार आरम्भ किया जाता है'। यह जिज्ञासा भी अनुशासित होकर ही किया जायेगा, यही इसका गर्भित आशय भी है। तत्त्वज्ञानियों ने हमारी शंका का समाधान भी किया है। हमसभी जीव समुदाय उसी परमात्मा के अंश हैं। **"ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः ॥"** यदि हम सभी उसी परमात्मा के अंश हैं, तो परमात्मा को क्यों खोजते फिर रहे हैं ! इसका कारण यह हो सकता है, कि हम उस विराट् परमात्मसत्ता से साक्षात्कार करने के लिए कर्तव्यानुसार अनुशासित नहीं हैं। परमात्मा को कोई उच्छृंखलता पसन्द नहीं। इसके लिए विद्वानों ने साधक को आध्यात्मिकमार्ग के निहित अनुशासन जैसे शुद्धिकरण-स्नान, वस्त्रधारण, आसन, आसन-शुद्धि, भस्मधारण या तिलकधारण, शिखाबन्धन, यज्ञोपवीतधारण, आचमन, प्राणायाम, मार्जन, अघमर्षण, न्यास, मुद्रा, विनियोग, ध्यान आदि जैसी क्रियाओं को करने के पश्चात् ही देवकार्य, पूजनकर्म, जपयोग आदि करने को कहा है। क्योंकि उपर्युक्त प्रकरण बहुत लम्बे न होकर अल्पावधि में ही सम्पन्न किये जा सकते हैं, तथा इनका प्रभाव भी कल्याणकारी होता है। साधनाकाल में हमें किस आसन पर बैठना चाहिये, हमारा आहार-विहार, खान-पान आदि कैसा होना चाहिये, इसके लिए भी निर्धारित अनुशासन बनाये गए हैं, जिनका अनुपालन निर्देशानुसार करना चाहिये। इसके लिए विद्वान अथवा गुरु का मार्गदर्शन लेना चाहिये अथवा प्रमाणित ग्रंथों की सहायता अथवा प्रणयन भी उचित है।

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः॥
(गीता, ६/३२)।

'जो योगी अपनी भांति सभी प्राणियों में सम देखता है और सुख अथवा दुःख को भी सबमें सम देखता है, वह योगी परम श्रेष्ठ माना गया है।' साधक अपनी सिद्धियों द्वारा दूसरों के दुःख को दूर करते हैं, भगवान् ने उन्हें इस कार्य के लिए लगाया है, ताकि हम उन्हें देखकर अनुकरण करें तथा एक आदर्श समाज का निर्माण करें। इससे हमारी भावी पीढ़ी भी सुशिक्षित होंगी। यह एक परम पारमार्थिक कार्य है। देखने में यह कार्य छोटा अवश्य प्रतीत होता है, किन्तु इसका असर युगों-युगों तक देखा जा सकता है। क्या स्वयं भगवान् ने अपनी लीला द्वारा दीन-दुखियों की सेवा नहीं की थी ? अगर भगवान् यह कार्य कर सकते हैं तो हम क्यों नहीं कर सकते। इस कार्य से ही विश्ववन्धुत्व की भावना का विकास संभव हो पायेगा। भारतीय सनातन संस्कृति में अध्यात्म की खोज असाधारण एवं क्रान्तिकारी मानी जानी चाहिये, जिसे मात्र आत्मतत्त्व की वेधशाला से ही देखा जा सकता है। हमें भोगवादी नहीं अपितु त्याग में प्रतिष्ठित होने को बताया जाता है। 'ईशावास्योपनिषद्' में कहा गया है—**तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद् धनम्'** अर्थात् उस ईश्वर को साथ रखते हुए त्यागपूर्वक भोगते रहो, आसक्त मत होओ; क्योंकि भोग्यपदार्थ किसी का भी नहीं है। इसी आसक्त जीवन-शैली में रहने से तनाव, बैचेनी, अकेलापन, भावशून्यता आदि जैसी गंभीर बीमारियाँ ईनाम में मिलती हैं। इन बीमारियों का ईलाज विज्ञानसम्मत अध्यात्म के ही पास है। मात्र दिखावे वाला धर्ममार्ग पर चलकर व्यक्ति भटकता रह जाता है। कहा गया है—**'अशांतस्य कुतः सुखम्'**। बनावटी जीवनशैली में वासना, तृष्णा, लोभ के अतिरिक्त कुछ भी तो नहीं, ये मात्र हमें यंत्रणा ही देते हैं।

अतः साधक अपनी साधना में प्रगाढ़ता लायें, मन को भटकने से रोकें। यह क्रिया बार-बार भी करनी पड़े, तो बेहिचक किया जाना चाहिये। भटके हुए मनरूपी पशु को बांधकर रखना ही उचित है। इसके लिए सतत् अभ्यास की आवश्यकता होती है। अगर भक्ति एवं श्रद्धा के साथ हरिकीर्तन किया गया हो, तो भगवान् स्वयं उपस्थित हो जाते हैं, ऐसे कई उदाहरण हमारे ग्रंथों में देखे जा सकते हैं। भगवान् ने स्वयं ही कहा है

कि—"मैं न तो बैकुण्ठ में निवास करता हूँ और न तो योगियों के हृदय में। मेरे भक्त जहाँ कीर्त्तन करते हैं, वहीं में रहता हूँ"। पुनः भगवान् ने यह भी कहा है कि—"जो एकबार भी हृदय से मेरा नाम पुकार लेता है, उसकी रक्षा का भार मैं स्वयं वहन करता हूँ एवं भक्त को निर्भय बना देता हूँ।" भगवान् के द्वारा दिया गया यह मात्र आश्वासन ही नहीं, अपितु यह घोषणा भी है।

You've Just Finished your Free Sample

Enjoyed the preview?

Buy: https://store.prowesspub.com